ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-1, No.-1, PP-337-340, YEAR-2014

अज्ञेय और उनकी असाध्य वीणा

❑ डॉ0 सन्तोष कुमार सिंह

सार– *अज्ञेय हिन्दी के आधुनिक भावबोध के प्रवर्तक और साथ ही प्रयोगवाद और नयी कविता के उन्नायक कवि रहे हैं । इस सन्दर्भ में उन्हें आधुनिक हिन्दी नई कविता का पर्याय कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इसके साथ ही वे तार सप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक एवं चौथा सप्तक के यशस्वी सम्पादक रहे तथा 'शेखर : एक जीवनी', 'अपने अपने अजनबी' और 'नदी के द्वीप' उपन्यासों के लब्धप्रतिष्ठ कथाकार व 'असाध्य वीणा' जैसी विलक्षण कविता के अद्वितीय रचनाकार भी। संस्कार और संवेदना, भारतीयता और आधुनिकता के द्वन्द्वात्मक सम्बन्धों की जैसी गहरी पहचान और इससे जुडा दायित्व सजग चिंतक अज्ञेय के यहाँ मिलता है, वैसा आधुनिक युग के शायद ही किसी अन्य लेखक में मिले। यही कारण है कि वे न केवल हिन्दी में आधुनिक भाव–बोध के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुए, बल्कि निरन्तर लगभग आधी शताब्दी तक अपनी और परवर्ती पीढी के लिए प्रेरणा और चुनौती बने रहे।*

वस्तुतः आधुनिक भावबोध, गहन अध्ययन, चिंतन–मनन एवं नये प्रयोगों के माध्यम से अज्ञेय न केवल पारम्परिक कविता की अन्तर्वस्तु और शिल्प में बदलाव लाए , बल्कि नई कविता को प्रयोग के ध रातल पर उतारकर , उसे नवीन सौष्ठव प्रदान कर , उसकी प्रयोगधर्मिता को भी स्थापित किया। यदि नये प्रयोग उनके सम्बल हैं , तो सत्यान्वेषण उनकी रचना दृष्टि का लक्ष्य। इससे जहाँ एक ओर उनका खोजी सृजनशील व्यक्तित्व, अथक अन्वेषक मानस स्पष्ट होता है वहीं दूसरी ओर उनके स्वतंत्रचेता एवं सतत जागरूक कवि रूप का भी परिचय मिल जाता है। हिन्दी साहित्य में अज्ञेय एक मात्र ऐसे सर्जक रहे , जो अपने जीवन व लेखन, दोनों में एक उत्कृष्ट मानदण्ड के आग्रह और उसके समुचित निर्वाह से परिचालित रहे। उनकी समग्र सृजन साधना और जीवनव्यापी कार्यों में भी सांस्कृतिक अस्मिता का यह आग्रह निरन्तर प्रतिफलित होते देखा जा सकता है। प्रारम्भ से ही अज्ञेय की छवि और भंगिमा पूरी तरह से कवि की ही थी। उदात्त, उत्तुंग और गंभीर।

अज्ञेय की महत्त्वपूर्ण लम्बी कविता 'असाध्य वीणा' में प्रियंवद का आत्म–समर्पण कलाकार के स्वाधीनता बोध का सृष्टिव्यापी विस्तार है। अज्ञेय की महत्ता इसी में आँकी जा सकती है कि, उन्होंने जीवनभर इसी 'स्वाधीनता–स्वतंत्रता' की अवधारणा को अपने सृजन, चिंतन और विचारबोध के केन्द्र में रखा और स्वतंत्रता और आत्मबोध के अन्वेषण की इस भूमिका को निभाते हुए हिन्दी को आधुनिकता और भारतीयता का संस्कार दे गये। 'असाध्य वीणा' अज्ञेय जी की सबसे लम्बी कविता है। सन् १९५७–५८ के जापान प्रवास के बाद १८–२० जून, १९६१ को अल्मोडा के अपने कॉटेज में उन्होंने ३२१ पंक्ति वाली यह लम्बी कविता लिखी थी। चीन के ताओवाद के एक कथानक 'वीणा वादन' और जापान के कलाप्रेमी कजुओ ओकाकुरा की पुस्तक में संकलित एक कहानी के आधार पर इस लम्बी कविता की परिकल्पना की गई थी। पाश्चात्य प्रेरणा के बाद भी 'असाध्य वीणा' को शुद्ध भारतीय धरातल पर रखते हुए सृजन–सम्प्रेषण समस्या को कविता के निहितार्थ के रूप में स्थापित कर अज्ञेय जी ने अपने अप्रतिम सर्जक व्यक्तित्व का परिचय दिया । यही कारण है कि 'असाध्य वीणा' को

एसोसिएट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, श्री सुदृष्टि बाबा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सुदिष्टपुरी–तानीगंज, बलिया (उ0प्र0), भारत

लम्बी कविताओं की परम्परा में ही नहीं, आधुनिक हिन्दी नयी कविता में भी अत्यन्त प्रांजल और प्रौढ़ रचना के रूप में स्वीकारा गया है।

कविता में एक संक्षिप्त आख्यान वर्णित है। कविता की शुरुआत नाटकीय ढंग से होती है। 'आ गये प्रियंवद केशकम्बली गुफा–गेह'। केशकम्बली के आगमन पर राजा कृतकृत्य हो गये, धन्य हो उठे। उनमें यह उम्मीद जगती है कि, अपने जीवन की अपूर्ण–साध पूरी होने वाली है। इसका लघु संकेत पाकर गण दौड़े। 'असाध्य वीणा' लाकर साधक के चरणों में रख दी गई। सभासदों की उत्सुक दृष्टि वीणा को लखकर प्रियंवद के चेहरे पर टिक गई। यहाँ अचानक दृश्य बदल जाता है और पूर्वदीप्ति की शैली में वीणा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का वर्णन चलता है। किंवदंती बन चुके तपस्वी साधक वज्रकीर्ति ने राजा को एक वीणा भेंट की थी, जिसे उन्होंने एक विराट् वृक्ष 'किरीट तरु' के तने से बनाया था , उसका फैलाव इतना व्यापक था कि, वह पाताल को बादलों के पार आकाश से जोड़ता था। इस तरु के कानों में हिम–शिखर अपने रहस्य कहा करते थे , उसके कंधों पर बादल सोते थे, उसकी छाया में अनगिनत जीव–जन्तुओं ने आश्रय पाया था। उसके कोटर में भालू बसते थे, उसके वल्कल से सिंह कन्धे खुजलाते थे। उसकी गंधप्रवण शीतलता से फन टिकाकर वासुकि नाग सोता था। जिस दिन वज्रकीर्ति ने उस किरीटी तरु से वीणा बनाकर पूरी कर ली, उसी दिन उनकी साधना एवं जीवन–लीला का भी समापन हो गया। ऐसे महान् वृक्ष से बनी अभिमंत्रित वीणा को बजायेगा कौन? बडे–बडे कलावंत भी इसे बजा न सके।

'मेरे हार गये सब जाने माने कलावंत
सब की विद्या हो गयी अकारथ, दर्प–चूर
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका!'

ऐसा लगता है राजा की वाणी में सम्राट् जनक का विचलित करने वाला जानकी–स्वयंवर का वर–विषयक नैराश्य गूँज रहा है – 'तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू'। और इस प्रकार यह वीणा ही असाध्य घोषित हो गई। यहाँ वर्णित वीणा एक सामान्य वीणा नहीं है, बल्कि मंत्रपूत असाधारण वीणा है। फिर किरीटी तरु की आत्मा अभी भी उसमें बसी हुई है। अतः ऐसी स्थिति में सामान्य व्यक्ति उसे साध नहीं सकता। उसमें से संगीत की सृष्टि वही कर सकता है , जो महामौन या ब्रह्म का साधक हो। विशिष्ट व मंत्रपूत होने के कारण वीणा जीवित है, परमसत्ता के साथ उसका सीधा रागात्मक सम्बन्ध अभी भी है। वह परमसत्ता की अभिव्यक्ति का मौनरूप है। अतः उसे बजाना नहीं, उसके मौन को तोड़ना है। कोई सामान्य कलावंत उसे बजा ही नहीं पाता। इसके

बावजूद राजा की आस्था बनी रही। उन्हें न जाने क्यों विश्वास था कि वज्रकीर्ति का तप व्यर्थ नहीं जा सकता। अपेक्षा है तो किसी सच्चे स्वर–सिद्ध की, समान–धर्मा साधक की। और चूँकि काल अनन्त है और पृथ्वी विशाल है, तो कोई न कोई तो मिलेगा ही। तब राजा एक 'केशकम्बली गुफागेह' को आमंत्रित करते हैं, जो तथाकथित 'कलाकार' नहीं है , वरन् एक 'शिष्य साधक' है। केशकम्बली ने वीणा हाथों में थामी। राजा और रानी समेत सभी सभाजन उदग्र, उत्सुक एवं प्रतीक्षमाण थे। प्रियंवद ने कम्बल खोलकर बिछाया, उस पर वीणा रखी और नेत्र मूँद लिये तथा तारों पर मस्तक टिका दिया। अपने को उसके प्रति समर्पित कर प्रियंवद उस वृक्ष के ध्यान में लीन हो जाते हैं। सभा में उपस्थित सहृदय ने सोचा कि साधक सो रहा है। जबकि साधक तो वीणा को साधने में तल्लीन था, आत्म–परिशोध करने में मग्न था। यहाँ पर अज्ञेय जी ने एक से एक ध्वनि प्रतीकों की झड़ी लगा दी है। इससे न केवल कवि का सौंदर्यबोध उजागर होता है, बल्कि कविता सहज भाव से प्रकृति और जीवन के साथ जुड़ जाती है।

यहाँ पाठक अज्ञेय के काव्य कौशल, उनके वर्णन चातुर्य, बिम्ब एवं नाद योजना से चमत्कृत हुए बिना नहीं रह पाता। कहना असंगत न होगा कि यहाँ अज्ञेय की कवि–प्रतिभा स्वतः मुखरित होकर बोल रही है और मात्र इन्हीं ध्वनि प्रतीकों के बल पर अज्ञेय

को महत्त्वपूर्ण आधुनिक कवि ठहराया जा सकता है। पुनश्च, किरीट तरु के आंतरिक जगत् से तादात्म्य स्थापित कर वीणा को संगीत की ओर प्रवृत्त करने के लिए केशकम्बली जिन शब्दों का सहारा लेता है, वह भी बेजोड़ है ।

किरीटी तरु के समक्ष यह उसका सच्चा, शुद्ध समर्पण था। ध्यान में' स्वयं को तिरोहित–समर्पित करते ही वीणा अपने आप झंकृत हो उठती है और उससे फूटने वाला संगीत सृष्टि का संगीत है, जिसे हर सहृदय अलग तरीके से सुनता है ।

यह अभूतपूर्व संगीत सबको अलग–अलग सुनाई पडता है । अपने–अपने कर्मफल और आकांक्षा के अनुरूप – 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।' किसी को वह संगीत प्रभु का कृपा–वाक्य जान पडा तो किसी को भरी तिजोरी में कनक की खनक। किसी के लिए वह नववधू की पायल–निस्वन थी और किसी के निमित्त शिशु की किलकारी। कोई उसमें मण्डी की ठेलमठेल का आनन्द ले रहा था, जबकि कोई उसे तालयुक्त घण्टा–ध्वनि समझ बैठा। किसी को उस संगीत में हथौडों की चोटें सुनाई पड़ीं और इतर जन को उसमें नौका पर लहरों की अविराम थपक। एक को यदि वह नट्टिन की पग–शिंजिनी की रुनझुन जान पड़ी तो दूसरे को युद्ध के कर्कष ढ़ोल। इस समष्टि–संगीत के अवतरण में सब व्यक्ति एक साथ डूबते जरूर हैं, परन्तु तिरते हैं सब अलग–अलग और प्रत्येक व्यक्ति की पृथक–पृथक इयत्ता जगती है।

जिस अस्मिता की तलाश यहाँ हो रही है वह अपने आत्म को सृष्टि की अखण्डता में तिरोहित करने वाली एक गुह्य अस्तित्व की तलाश है। यह शब्द ब्रह्म की तलाश है, ओहम से सोहम तक की यात्रा है। किन्तु यह महत्त्वपूर्ण है कि कविता के अन्त में कवि सीधे अपने पाठक को सम्बोधित करता है – 'प्रिय पाठक मेरी वीणा मौन हुई!' पाठक को सम्बोधित उनकी यह उक्ति छद्म आत्मपरकता का रोचक उदाहरण प्रस्तुत करती है। दूसरे शब्दों में कहें तो समापन की ये पंक्तियाँ पाठक को इस विनोदपूर्ण आभास का आनन्द देती हैं कि कवि वस्तुपरकता के छद्म से मानो आत्मकथा ही कहता रहा है। वस्तुतः हर बड़ा कवि 'असाध्य वीणा' को ही बजाता है । इस कविता को ध्यान से पढ़ने के बाद हम लोग जान जाएँगे कि 'असाध्य वीणा' को साधने वाला प्रियंवद केशकम्बली और कोई नहीं स्वयं सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी जी के कथनानुसार 'अज्ञेय के संदर्भ में यह 'मौन' मित कथन है, कहने और करने के बीच अनकहना है और गहरे स्तर पर आत्मदान का भाव है, जहाँ बोलना मानो आक्रमण है, मौन ही अपने को दे देना है। इस मौन के संदर्भ में विद्यानिवास जी ने लिखा है कि 'अंतिम पंक्तियाँ इसलिए आवश्यक थीं कि वाणी की सार्थकता मौन में है...यह मौन एक तरह से उस विराट् सत्य के नाना मुखरित रूपांतरों के ध्यान का संस्कार पाकर मौन बना है, यह अजनबी वीणा की तरह वीणा के स्रोत के आवाहन के माध्यम से बजकर मौन हुआ है, दूसरे शब्दों में स्रष्टा के संस्कार के प्रसाद–रूप में पाये हुए नये व्यक्तित्व के रूप में उदय हुआ है।'

मौन से मुखर और मुखर से मौन, द्वैत से अद्वैत, मम से ममेतर, व्यष्टि से समष्टि और पुनः समष्टि से व्यष्टि की विलक्षण यात्रा करने वाली यह कथात्मक लम्बी कविता अन्ततोगत्वा यह संदेश देती है कि सृजन कर्म, चाहे वह कला हो या साहित्य, नृत्य हो या संगीत, अंततः सर्वशक्तिमान का ही स्वर है, परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है। 'असाध्य वीणा' को बजाने वाला केशकम्बली गलकलुष और निरभिमानी होकर, कर्तृता के बोध का त्याग करके वज्रकीर्ति द्वारा निर्मित 'असाध्य वीणा' को बजाता है। यहाँ केशकम्बली माध्यम मात्र है। वीणा बजाने का श्रेय उसको नहीं जाता। केशकम्बली की स्वीकारोक्ति द्रष्टव्य है –

" श्रेय नहीं कुछ मेरा
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में । "

इस प्रकार प्रियंवद भी वीणा के सामने पूर्णतः समर्पित हो जाता है , उसमें तन्मय हो जाता

है... तभी वीणा के माध्यम से वह विश्व संगीत , उस परम सत्ता का अस्तित्व अनुभूत होता है। कदाचित् इसीलिए भारतीय परम्परा में अभ्यास से ज्यादा साधना पर जोर दिया जाता है, प्रदर्शन से ज्यादा समर्पण पर। अज्ञेय ने 'ताजमहल की छाया में' कविता में लिखा भी है – 'साधन तो क्या, व्यक्ति साधना से ही होता दानी।'

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रमेशचन्द्र शाह, अज्ञेय, साहित्य अकादेमी, दिल्ली।
2. कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय होने का अर्थ, वत्सल निधि।
3. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी काव्य संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन।
4. नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन।
5. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन।
6. नरेश मेहता , काव्यपुरुष अज्ञेय, लोकभारती प्रकाशन।
7. विजयमोहन सिंह , बीसवीं शताब्दी : हिन्दी साहित्य, राजकमल प्रकाशन।